स्वार्थ–निस्वार्थ

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,

पूर्व कुलपति सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

अपने लिए, अपने परिवार के लिए, अपने सगे सम्बन्धियों के लिए और अपने तक सीमित रहना स्वार्थ है। दूसरों के लिए बिना किसी स्वार्थ का हित चिन्तन करना निस्वार्थ है। स्वार्थ और निस्वार्थ में संतुलन होना चाहिए। स्वार्थ की भावना मनुष्य को सीमित कर देती है। निस्वार्थ की भावना मनुष्य के व्यक्तित्व को उज्जवल बना देती है। व्यक्ति की इच्छाएं आकाश के समान अनन्त हैं उनको कभी भी पूरा नहीं किया जा सकता। इसलिए इच्छाओं पर नियंत्रण करना चाहिए। आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सकती है किन्तु तृष्णा की पूर्ति कभी नहीं की जा सकती। गीता में निस्वार्थ भाव से कर्म करने की प्रेरणा दी गयी है। निस्वार्थी व्यक्ति वह होता है जो परिणाम की आशा किये बिना कार्य करता है। जो व्यक्ति दान देने के बाद दान प्राप्त करने की आशा नहीं करता वह निस्वार्थी है।

स्वार्थ एक सीमा तक होना चाहिए। जब इच्छाएं पुरी हो जायें तो दूसरों की भलाई के लिए लगना चाहिए। जो व्यक्ति सेवा करता है वह पूजनीय हो जाता है। जो परोपकार करता है वह परोपकारी कहलाता है। परोपकारी व्यक्ति किसी से भय नहीं करता। महापुरूष परोपकारी होते हैं और परमार्थ के कार्य में लगे रहते हैं। महापुरुषों का जीवन परमार्थ का जीवन है। वे समाज से लेते कम हैं और देते अधिक हैं। स्वार्थी व्यक्ति सीमित सोच का होता है। कोल्हू के बैल की तरह सीमित दायरे में जीवन जीता है। किन्तु परार्थी व्यक्ति समाज के लिए जीवन जीता है।

प्रकृति भी हमें परोपकार की शिक्षा देती है। वृक्ष अपना फल स्वयं नहीं खाता। नदियां अपना जल स्वयं नहीं पीती हैं। इसी प्रकार जो व्यक्ति परोपकार में लगा रहता है, समाज का कल्याण करता है उसका जीवन धन्य हो जाता है। सूर्य और चन्द्रमा का प्रकाश किसी वर्ग विशेष के लिए नहीं अपितु सबके लिए समान है। परमार्थ के मार्ग पर चलने के लिए स्वयं को

जानना आवश्यक है। जो आत्मज्ञानी होता है उसके लिए सम्पूर्ण पृथ्वी ही अपना परिवार होती है। स्व और पर का भेद उसके लिए नहीं होता। सभी प्राणी उसके लिए समान होते हैं।

कोई किसी से बैर न करे, कोई किसी से रागद्वेष न करे। यह संसार सबका है किसी एक व्यक्ति या प्राणी का नहीं। इसलिए इसका उपभोग सभी संयम पूर्वक करें, कोई किसी के जीवन में हस्तक्षेप न करे। प्रकृति मानव को सभी चीजे उपलब्ध करायी है। सूर्य का प्रकाश सभी लोगों के लिए है। वायु सभी के लिए है। सम्पूर्ण वायुमण्डल सभी के लिए है आवश्यकता है इनके सदुपयोग की। यदि मानव त्यागपूर्वक इनका उपयोग करता है तो प्रकृति का खजाना कभी समाप्त होने वाला नहीं है। प्रकृति ने बहुत दिया है।

मानव एक सामाजिक प्राणी है स्वार्थ, परार्थ और परमार्थ की चेतना उसमें समाहित है। व्यक्ति अपने आप में कैसा भी है, वह उसकी वास्तविकता है। जब वास्तविकता को छुपाकर केवल दिखावा करने की प्रवृत्ति चल पड़ती है तो यह एक ऐसी प्रवृत्ति है कि उसका अंत ही कठिन हो जाता है। इनमें कोई संदेह नहीं कि मानव ने अपने रहन–सहन और व्यवहारों की नग्नता को ओट देने के लिए एक सभ्यता का निर्माण किया है।

सभ्यता के लोक व्यापी प्रतिमान होते हैं और उन प्रतिमानों की सुरक्षा करना प्रत्येक सामाजिक व्यक्ति के लिए अनिवार्य हो जाता है। सभ्यता के प्रतिमानों की सुरक्षा को हम प्रदर्शन नहीं कह सकते। प्रदर्शन रूप प्रतिमान वे होते हैं जिनमें सभ्यता के भाव मुख्य नहीं होकर प्रदर्शन के भाव तीव्र होते हैं। अपने ठाठ–पाट वैभव और देह को अन्य व्यक्तियों के सामने अलंकृत करके प्रस्तुत करना, वह प्रदर्शन है जिसे आम व्यक्ति साश्चर्य देखा करे और उस तरफ आकर्षित हों किन्तु यथार्थ में वह भव्यता जो दिखाई देती है, होती नहीं है। सभ्यता के प्रतिमान की सुरक्षा में भी कुछ अंशों में तो यह होता है किन्तु वह स्थापित लोक स्वीकृत प्रतिमान होता है। अतः वह हेय नहीं है।

जीवन को जिन महापुरुषों ने बहुत गहरे तक समझा है, उन्होंने प्रदर्शन दिखावा और आडम्बर को नितान्त अनावश्यक और हेय घोषित किया है। शास्त्रों में आडम्बर का स्पष्ट निषेध है। मानव जीवन मे चार तरह के ऋण हैं– गुरु ऋण, देव ऋण, पितृ ऋण, और समाज ऋण।

योगी लोग भी इसके महत्व को नहीं समझ सके। सेवा एक शाश्वतिक धर्म है। सेवा भेद को समाप्त कर देती है। ऊँच–नीच, बड़ा–छोटा का भेद सेवाभाव में नहीं रहता। सेवा एक आंतरिक गुण है। सेवा अहंकार को भी समाप्त कर देती है।

शिष्य के प्रति गुरु का भाव और गुरु के प्रति शिष्य का भाव कैसे होना चाहिए, यह सेवा के द्वारा ही प्रकट होता है। शिष्य को चाहिए कि वह गुरू की तरफ पैर करके न बैठे। ऊँचे स्वर में गुरु से बात न करे। गुरु के इंगित को समझकर उसके आदेश को मानने के लिए सदैव तत्पर रहे। गुरु के समक्ष सदैव विनम्रता का भाव प्रकट करे। नम्र वाणी में व्यवहार करे, जिससे गुरु की कृपा शिष्य पर बनी रहे। प्राचीनकाल में भारत में गुरुकुल परम्परा थी। शिष्य गुरु के आश्रम में जाकर शिक्षा ग्रहण करते थे। शिष्य सेवा करते थे। गुरु उनको विद्यादान देते थे। जिससे शिष्य के भविष्य का निर्माण होता था।